प्रवाह

अमर उजाला

नई दिल्ली ■ मंगलवार, 28 मार्च 2017

निर्भीक पत्रकारिता का सातवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

आर्थिक गतिविधियों तथा प्रयास पर ही विकास निर्भर है। प्रयास का मतलब है निरंतर काम करना

...कैल्विन कॉलिज

किसानों की मदद के लिए घोषित 1,700 में से 12 सौ करोड़ रुपये आवंटित नहीं किए जा सके। इसमें अधिकारियों की जवाबदेही तय होनी चाहिए; पूरे परिदृश्य को देखें तो किसानों की यही स्थिति है, जहां उनकी बेबसी बढ़ती जा रही है।

आपराधिक लापरवाही

उत्तर प्रदेश में दो वर्ष पूर्व ओलावृष्टि और बारिश से फसल को हुए नुकसान की भरपाई के लिए केंद्र और राज्य सरकार, दोनों ने ही शुरुआती तकरार के बाद किसानों के लिए मुआवजे की घोषणा की थी, मगर अमर उजाला की विशेष रिपोर्ट बताती है कि इस मद में राज्य सरकार द्वारा इस वर्ष दिए गए 1,700 करोड़ रुपये में से सिर्फ 480 करोड़ रुपये ही जरूरतमंद किसानों तक पहुंच सके हैं और अब विभिन्न जिलों के अधिकारी बाकी के 12 सौ करोड़ रुपये सरकारी खजाने में लौटाने की जुगत कर रहे हैं। यह सिर्फ अधिकारियों की संवेदनहीनता ही नहीं, आपराधिक लापरवाही का भी मामला है, जिसमें निश्चय ही जवाबदेही तय की जानी चाहिए। सूबे के किसान पहले ही बदहाली का सामना कर रहे थे, तिस पर मौसम ने उन पर ऐसा वार किया था कि उनकी खड़ी फसल बर्बाद हो गई थी। उस समय 52 जिलों को आपदाग्रस्त घोषित किया गया था और तब केंद्र सरकार ने 2,800 करोड़ रुपये और तत्कालीन अखिलेश सरकार ने 2,917 करोड़ रुपये मुआवजे के बतौर किसानों को देने की घोषणा की थी। राज्य सरकार ने अपने हिस्से का करीब 1,700 करोड़ रुपये मौजूदा वित्त वर्ष में आवंटित किया था, मगर अधिकारियों की मेहरबानी से सिर्फ आठ जिलों में ही किसानों तक मदद पहुंच सकी। हैरानी की बात है कि अधिकारी अब कह रहे हैं कि नोटबंदी के कारण किसान अपने जन धन खाते में यह रकम लेने को तैयार नहीं थे! इससे बचकाना तर्क कुछ और नहीं हो सकता, क्योंकि नोटबंदी की घोषणा तो नवंबर में की गई थी। पूरे परिदृश्य को देखें, तो किसानों और कृषि क्षेत्र की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। पूरे देश में किसानों की यही स्थिति है, उन्हें उनकी फसल का वाजिब दाम नहीं मिलता, तो दूसरी ओर लागत लगातार बढ़ती जा रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि किसानों की आत्महत्या कम नहीं हुई है और ऐसा लगता है जैसे हमारी सामूहिक चेतना को लकवा मार गया है। यदि सरकारें और विभिन्न संस्थाएं अपनी जवाबदेही ठीक से समझतीं, तो किसानों की यह स्थिति नहीं होती; यही वजह है कि सर्वोच्च अदालत ने सरकार से किसान आत्महत्या को रोकने के लिए उठाए जाने वाले कदमों पर रिपोर्ट मांगी है। वास्तव में किसानों को इस स्थिति से उबारने के लिए व्यापक नीति के साथ ही उनमें भरोसा पैदा करने की जरूरत है।

सियासत से बनती सड़क

संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक वर्ग को अपने निजी लाभ की आकांक्षाओं के साथ ही मतदाताओं के बीच अपनी पार्टी की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए संतुलन साधना ही होगा।

अंजली थामस बोहल्कन

हर साल भारत की सरकार अपने नागरिकों को पानी, सफाई, बिजली और सड़क जैसी बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराने के लिए सार्वजिनक आधारभूत संरचना से संबंधित संसाधनों पर अच्छा-खासा धन खर्च करती है। ऐसे प्रयासों में आम नागरिकों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने की क्षमता होती है, मगर इन कार्यक्रमों के राजनीतिक प्रभाव में उलझ जाने को लेकर तीखी आलोचना भी की जाती है। लेकिन वास्तव में भारत में सार्वजनिक आधारभूत कार्यक्रम के क्रियान्वयन में राजनीतिक प्रभाव की कितनी भूमिका होती है? इस सवाल का जवाब तलाशने से हमें यह समझने में मदद मिल सकती है कि क्या ऐसे कार्यक्रमों में गुणवत्ता होती है, फिर चाहे इनमें राजनीतिक दखलंदाजी को टाला न जा सके।

मैंने इसका जवाब तलाशने के लिए वर्ष 2000 में केंद्र सरकार द्वारा शुरू की गई प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना (पीएमजीएसवाई) का विश्लेषण किया। पीएमजीएसवाई केंद्र सरकार की ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित अग्रणी योजनाओं में से एक है और 2012 से 2017 के दौरान ग्रामीण विकास मंत्रालय के कुल बजट से 28 फीसदी आवंटन इसे प्राप्त हुआ है।

कई पैमाने पर पीएमजीएसवाई को भारी सफलता मिली है। अमल में आने के बाद से इसने पूरे भारत में एक लाख ग्रामीण बस्तियों (गांवों) को हर मौसम में काम करने वाली सड़क से जोड़ा है। अर्थशास्त्रियों सैम एशर और पॉल नोवोसैड के शोध ने भी दिखाया है कि इस योजना के तहत बनी नई सड़कों ने ग्रामीण रोजगार में भी वृद्धि की है। इसके साथ ही जॉनथन लेहने, जैकब शापिरो और ओलिवर वांडेन आईदे ने इस योजना के क्रियान्वयन में हुए अपराध और भ्रष्टाचार को दस्तावेज रूप में संग्रहित किया है। इसलिए जहां इस योजना के क्रियावन्यन में राजनीतिक प्रभाव की व्यापकता स्वीकारी गई है, वहीं ऐसे प्रभाव का असर मिश्रित रहा। आखिर कब और क्यों राजनीतिक प्रभाव सार्वजनिक हित और विकास के पक्ष में काम करता है? और कब इसके साथ ही या फिर इसके बिना भी यह भ्रष्टाचार और वसूली को बढ़ावा देता है?

इस सवाल का जवाब पीएमजीएसवाई के क्रियान्वयन में नियंत्रणकारी भूमिका निभाने वाले राज्य सरकार के मंत्रियों को मिलने वाले प्रोत्साहन पर गौर करने से मिल सकता है। चूंकि भारत एक संसदीय लोकतंत्र है, लिहाजा मंत्री का अपना करियर उसकी पार्टी के सदस्यों की चुनावी सफलता पर निर्भर होता है। यदि मतदाताओं को सार्वजनिक सुविधाएं मुहैया कराने से सत्तारूढ़ दल को चुनावी लाभ होता है, तो फिर इन मंत्रियों को भी प्रोत्साहन मिलेगा, ताकि वे अपने सहयोगियों के क्षेत्रों में भी सड़कें बनवाकर उन्हें मदद कर सकें। चूंकि सड़क के निर्माण से मंत्रियों को होने वाला आर्थिक लाभ निजी लाभ के रूप में होगा, इसलिए वे अपने सहयोगियों की कीमत पर ऐसे काम अपने हाथ में लेना चाहेंगे, जिससे उन्हें लाभ हो। वास्तव में पार्टी के सहयोगियों की वसूली से मतदाताओं में पार्टी की छवि पर असर पड़ सकता है, इसलिए मंत्री अपने पार्टी सहयोगियों की उन अवसरों तक पहुंच सीमित करना चाहेंगे, जिससे वे धन लाभ कमा सकते हैं। इसके परीक्षण के लिए मैंने सरकार के पीएमजीएसवाई से संबंधित ऑनलाइन प्रबंधन और नियंत्रण प्रणाली की मदद ली, जिसमें पूरे भारत से संबंधित दसियों हजार (छोटी-बड़ी) सड़क परियोजनाओं के डाटा उपलब्ध हैं। मेरा विश्लेषण 'बीमारू' कहे जाने वाले राज्यों और उनसे अलग होकर बने राज्यों (बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड) पर केंद्रित है,

जहां ऐतिहासिक रूप से खराब आधारभूत ढांचा है, जिसमें ग्रामीण सड़क शामिल है। यह जानने के लिए कि वर्तमान राजनीतिक सत्ता पीएमजीएसवाई के क्रियान्वयन पर कैसा प्रभाव डालती है, मैंने भौगोलिक सूचना से संबंधित सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल किया और एक एक विधायक के क्षेत्र से संबंधित सड़क परियोजना का मिलान किया। इससे मुझे यह देखने में मदद मिली कि मंत्रीगण और साधारण विधायक जिनका मंत्रियों से संबंध न भी रहा हो, कैसे अपने क्षेत्रों में पीएमजीएसवाई के क्रियान्वयन को प्रभावित करते हैं।

मेरा विश्लेषण दिखाता है कि मंत्रीगण सार्वजनिक सुविधाओं को उपलब्ध कराने में अपने निचले क्रम के सहयोगियों की मदद तो करना चाहते हैं, मगर वे आर्थिक लाभ (वसूली) से संबंधित अवसरों तक अपने समकक्ष सहयोगियों की पहुंच को सीमित करते हैं। विश्लेषण यह भी दिखाता है कि सत्तारूढ़ दल के मंत्री या साधारण विधायक औसत रूप में आधारभूत संरचना उपलब्ध कराने में अधिक सक्षम साबित होते हैं। हालांकि जब बात ऐसे अवसरों की आती है, जिसमें आर्थिक लाभ के लिए गुणवत्ता से समझौता किया जाए, तो फिर सत्तारूढ़ दल के साधारण विधायकों के क्षेत्रों की कीमत पर मंत्रियों के क्षेत्रों को लाभ पहुंचाया जाता है।

मंत्रियों की तुलना में उनकी पार्टी के साधारण विधायकों के क्षेत्रों में अंतर की वजह यह नहीं है कि वे कम प्रभावशाली होते हैं। सत्तारूढ़ दल के विधायकों को यह अवसर होता है कि वे अपने मंत्रियों के जरिये नौकरशाही पर सड़कें बनवाने के लिए दबाव डाल सकते हैं। हालांकि आर्थिक लाभ से संबंधित अवसरों तक उनकी पहुंच नहीं हो पाती। पीएमजीएसवाई जैसे आधारभूत संचरना से जुड़े कार्यक्रम यदि राजनीतिक प्रभाव में उलझ जाएं तो जरूरी नहीं कि उससे नुकसान ही होता है। संसदीय लोकतंत्र प्रणाली में राजनीतिक वर्ग को अपने निजी लाभ की आकांक्षाओं के साथ ही मतदाताओं के बीच अपनी पार्टी की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए संतुलन साधना ही होगा। लिहाजा जिन मंत्रियों के पास आधारभूत संरचना का नियंत्रण होता है और जो इसकी आड़ में निजी लाभ कमाना चाहते हैं, उन्हें अपने सहयोगियों के क्षेत्रों में भी काम करके दिखाना होता है।

लेखिका जॉर्जिया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में अंतरराष्ट्रीय मामलों की सहायक प्राध्यापक हैं

उदासी और अकेलेपन ने मुझे रचनात्मक ऊर्जा दी

अंतर्ध्वनि

>> बुद्धदेव दासगुप्ता

मेरा जन्म पुरुलिया जिले के अनारा में हुआ। मेरे पिता रेलवे में डॉक्टर थे। पुरुलिया जिले में लोक संस्कृति की जड़ें बेहद गहरी थीं, जिसने मेरे मन में प्रबल छाप छोड़ी। मेरे पिता गांधीवादी थे, हालांकि आजादी के बाद उनका रुझान मार्क्सवाद की तरफ हो गया था। मेरी मां हमें पुराण और उपनिषदों की कहानियां सुनाती थीं। वह ब्रह्म समाज के गीत गाती थीं। मैं उनको पियानो बजाते सुनता था,

जिसकी गूंज आज भी मेरे कानों में है। मैं भाग्यशाली हूं कि प्रकृति के सौंदर्य के बीच मैंने अपनी आंखें खोलीं। गुरुदेव का साहित्य मुझे बेहद पसंद है, और मैं प्रार्थना की तरह रवींद्र संगीत सुनता हूं। पर मेरे साहित्य और सिनेमा में रवींद्रनाथ का प्रभाव नहीं है। इसी तरह फिल्म बनाते हुए मैं कोई खाका नहीं खींचता। मेरी फिल्मों में बहुत कुछ अप्रत्याशित होता है। फिल्म के क्षेत्र में मैं अचानक नहीं आया। बचपन से ही छाया मुझे बेहद आकर्षित करती रही है। बचपन के अनेक दृश्य मेरे मस्तिष्क के हार्ड डिस्क में सुरक्षित रह गए, जिन्हें मैंने अपनी फिल्मों में फिर से सृजित किया, जैसे- बाघ जैसा वेष बनाकर नाचने वाले कलाकार की बहुत पुरानी स्मृति को मैंने बाघ बहादुर फिल्म में साकार किया। बचपन में हमारे घर में इतनी भीड़ रहती थी कि एकांत की कोई गुंजाइश नहीं थी। बड़े होने पर साहित्य, संगीत और पेटिंग ने मुझे अकेलापन दिया, इस अकेलेपन और उदासी ने मुझमें फिल्म बनाने की जो रचनात्मक ऊर्जा दी, उसके लिए मैं ईश्वर का धन्यवाद करता हूं।

-जाने-माने फिल्म निर्देशक।

मंजिलें और भी हैं

>> पद्मजा राममूर्ति

सिखाने की भूख ने बेसहारा बच्चों से जोड़ा

मैं बंगलूरू में रहती हूं और मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा शिक्षण कार्य में बीता है। मैं निजी और सरकारी, दोनों तरह के प्राथमिक स्कूलों में पढ़ाने के बाद रिटायर हो चुकी हूं। उसके बाद भी शिक्षण का मेरा काम निरंतर जारी है। जीवन के जिस दौर में लोग आराम के बारे में सोचते हैं, उस दौर में भी अध्यापन का मेरा अनुभव काम आ रहा है।

दरअसल मेरे पति की तबादले वाली नौकरी थी, इसलिए मेरा जीवन अलग-अलग शहरों में बीता। बंगलूरू से मेरे पति का तबादला चेन्नई हो गया था। मैंने चेन्नई के उस पद्मा शेषाद्रि स्कूल में शिक्षिका की नौकरी शुरू की, जिसे देश के बेहतरीन स्कूलों में गिना जाता है। वहां पढ़ाते हुए मैंने बी.एड. कर लिया। चेन्नई से मेरे पति का तबादला कोलकाता हो गया। वहां के स्कूल में पढ़ाते हुए मैंने पहली बार पारंपरिक अध्यापन शैली की जगह शिक्षण की नई शैली पर जोर दिया। मैंने प्रोजेक्ट्स, एक्टीविटीज और टेक्नोलॉजी-जैसे ऑडियो विजुअल माध्यम और मल्टीमीडिया आदि के जरिये छात्रों को पढ़ाना शुरू किया।

अध्यापन मेरा जुनून है, इसलिए एक नए तरह के स्कूल में पढ़ाने का प्रयोग मुझे संतुष्ट करता है।

पढ़ाने की भूख मुझमें इतनी तीव्रतर होती गई कि मैं हमेशा अपने छात्रों से अधिक जानने की कोशिश में लगी रही। शिक्षिका के तेरह साल के अपने कार्यकाल में मैंने जहां हाई प्रोफाइल निजी स्कूलों में काम किया, वहीं साधारण सरकारी स्कूलों में भी नौकरी की। निजी स्कूलों में नित नवीन प्रयोग करने की छूट थी, लेकिन साधनविहीन सरकारी स्कूलों में उपलब्ध संसाधनों से ही पढ़ाने की मजबूरी थी। लेकिन इससे मुझे कोई परेशानी नहीं हुई। मैं जानती थी कि अध्यापन में संसाधन प्रमुख नहीं है, जज्बे का महत्व है। उसमें यह मायने रखता है कि छात्रों को समझाने के लिए आप कहां तक जा पाते हैं।

अध्यापन की इसी भूख को देखते हुए मैंने रिटायरमेंट के बाद एपीएसएम ड्रीम स्कूल में इंग्लिश टीचर के तौर पर जॉइन किया। इस स्कूल में वे बच्चे पढ़ते हैं, जो मानव तस्करी के जरिये यहां पहुंचे हैं या जिन्हें उनके परिवार वालों ने छोड़ दिया है। इस स्कूल में ऐसे बच्चों के लिए एक साल का खास कोर्स है। चूंकि ऐसे बच्चों को शिक्षित करने के बारे में लोग नही सोचते, इसीलिए भी मैंने इससे जुड़ने का फैसला किया। और झूठ नहीं कहूंगी, इन बच्चों को पढ़ाते हुए मुझे जो संतोष मिलता है, वैसा संतोष इससे पहले कभी नही मिला। जब सड़क पर भटकते बच्चे इस स्कूल में आते हैं, तो वे शून्य होते हैं। लेकिन कुछ ही दिनों में उनके चेहरे पर आत्मविश्वास झलकने लगता है। इस स्कूल में छात्र चूंकि अलग-अलग पृष्ठभूमि से आते हैं, ऐसे में, आप उन्हें पारंपरिक तरीके से पढ़ा भी नहीं सकते। मेरी चुनौती इसलिए भी बड़ी थी, क्योंकि मुझे उन हाशिये के बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाना था, जो न केवल कन्नड़ भाषी हैं, बल्कि उनके परिवार में भी अंग्रेजी सीखने की परंपरा नहीं है। लेकिन सिर्फ अंग्रेजी नहीं, विभिन्न तरह के गैरपारंपरिक कोर्सेज को संचालित करने की जिम्मेदारी मेरे ही पास है। इस स्कूल में बाल श्रम पर अलग से फोकस किया गया है। इस तरह हम कंस्ट्रक्शन साइट्स में काम करने वालों के बच्चों को पढ़ाते हैं।

लोग कहते हैं कि रिटायरमैंट के बाद आप यह काम क्यों कर रही हैं। पर मैं उन्हें कैसे बताऊं कि बेसहारा बच्चों को शिक्षित करने, उन्हें जीवन में आगे बढ़ने के लिए बताने से बेहतर काम मेरे लिए कुछ नहीं है। मैंने सोच लिया है कि जब तक शारीरिक रूप से समर्थ रहूंगी, तब तक यह काम करती रहूंगी।

- विभिन्न साक्षात्कारों पर आधारित।

अपने जीवन स्तर से संतुष्ट भारतीय

संयुक्त राष्ट्र के मानव विकास सूचकांक में भारत भले ही अब भी बहुत पीछे हो, लेकिन इसी वैश्विक संस्था द्वारा कराया गया एक सर्वे बताता है कि भारत में करीब 63 प्रतिशत लोग अपने जीवन स्तर से संतुष्ट हैं।

उमेश चतुर्वेदी

दुनिया भर की धार्मिक और आध्यात्मिक मान्यताएं इस पर एकमत हैं कि खुशियां व्यक्ति के अंदर से उपजती हैं। आर्थिक और सामाजिक आधार एक हद तक ही उसके लिए जिम्मेदार होते हैं। इसलिए भारतीय परंपरा में संतोष धन को सबसे अच्छा माना गया है। भारत में जब से आर्थिक उदारीकरण की गति में तेजी आई है, तब से निजी जिंदगी के स्तर पर भारतीयों की संतुष्टि में कमी आती गई। पर उदारीकरण के बाद संभवतः यह पहला मौका है, जब भारत में संतुष्टि का भाव बढ़ा है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2014-15 में कराए गए सर्वे के हाल ही में जारी किए गए नतीजे बताते हैं कि भारत में करीब 63 प्रतिशत लोग अपने जीवन स्तर से संतुष्ट हैं। यह हालत तब है, जब संयुक्त राष्ट्र की 188 देशों की मानव विकास रिपोर्ट के सूचकांक में भारत का नंबर 130 वां हैं। फिर भी 63 प्रतिशत लोग अगर अपनी जिंदगी से संतुष्ट हैं, तो इसका श्रेय भारतीयों की पारंपरिक मनीषा को ही जाना चाहिए।

मानव विकास सूचकांक तैयार करते समय संयुक्त राष्ट्र ने जो मानक बनाए हैं, उसमें दस में से भारतीयों ने 4.3 अंक हासिल किए हैं। इसमें निश्चित तौर पर भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं का बड़ा योगदान है। इसमें ऊर्जा क्षेत्र में हो रहे निवेश में बीस वर्षों से लगातार जारी 1.5 प्रतिशत बढ़ोतरी के साथ मनरेगा जैसी योजनाओं की कामयाबी का योगदान ज्यादा है। इनसे लोगों को लगातार रोजगार मिल रहा है और गरीब तबके के लोगों की जिंदगी की मूलभूत जरूरतें पूरी हो पा रही हैं। इसी कारण भारतीय की संतुष्टि का स्तर बढ़ा है। भारत एशिया की तीसरी बड़ी आर्थिक ताकत बन रहा है। जिस प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को विकास और समृद्धि का मानक माना जाता है, वह चीन के बाद भारत में भी तेजी से बढ़ रहा है। भूटान और नेपाल जैसे दक्षिण एशियाई देशों में आर्थिक विकास भारत के मुकाबले नगण्य है, पर वहां के लोगों की जिंदगी का संतुष्टि का स्तर भारत के लगभग बराबर ही है। हां, पाकिस्तान इसके मुकाबले और पीछे है। इस रिपोर्ट के मुताबिक चीन जहां तेजी से विकसित हो रहा देश है, वहीं भारत में विकास दर कम है। यानी भारत को अपना विकास लक्ष्य हासिल करने के लिए और तेजी से काम करने की जरूरत है।

बेशक विकास सूचकांक के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक स्तर के साथ ही रोजगार को जरूरी पैमाना माना जाता है। निश्चित तौर पर ये सारी सहूलियतें सरकारी ढांचे से ही निकलकर लोगों तक पहुंच सकती हैं। पर दुर्भाग्यवश भारत का प्रशासनिक ढांचा अब भी औपनिवेशिक चरित्र से बाहर नहीं निकल पाया है। भारत में जब भी नागरिक सहूलियतों को लेकर नीतियां तैयार की जाती हैं, तो उसके केंद्र में महानगर ही होते हैं। इस सोच के चलते संतुलित विकास का ढांचा अब भी भारत में तैयार नहीं हो पाया है। देश की बड़ी आबादी अब भी सुविधाओं से दूर है। इसके बावजूद वह कहीं ज्यादा जिंदादिल है। गांवों में अभाव तो है, लेकिन अवसाद नहीं है। कहीं न कहीं यह प्रवृत्ति भी भारत को लेकर सामने आए मानव विकास सूचकांक में झलक रही है। यह सामाजिक और सांस्कृतिक ताना-बाना ही है कि भारत की 72 प्रतिशत महिलाएं और 69 प्रतिशत आबादी खुद को सुरक्षित मानती है। 74 प्रतिशत आबादी को भारतीय न्यायिक व्यवस्था पर भरोसा है, वहीं 69 प्रतिशत आबादी को सरकार पर भरोसा है। यह रिपोर्ट उस अवधारणा को गलत साबित कर रही है, जिसके मुताबिक मोदी सरकार को लेकर बड़ा तबका भरोसेमंद नहीं है।

खुली खिड़की

हांगकांग में आर्थिक आजादी सर्वाधिक

आर्थिक आजादी का मतलब है कि किसी देश में व्यापार और उद्योग सरकारी हस्तक्षेप के बिना किस तरह चलते हैं। पूंजीवादी देशों में आर्थिक स्वतंत्रता सबसे अधिक होती है। वर्ष 2017 के आर्थिक स्वतंत्रता सूचकांक में हांगकांग सबसे ऊपर है। उसके बाद सिंगापुर का स्थान है। आर्थिक स्वतंत्रता को चार पैमाने पर मापा जाता है-कानून का शासन, सरकार का आकार, विनियामकों की कार्यकुशलता और खुला बाजार। भारत इस सूची में 52.6 अंक के साथ 143 वें स्थान पर है। जबकि पिछले साल भारत इस सूचकांक में 112 वें स्थान पर था।

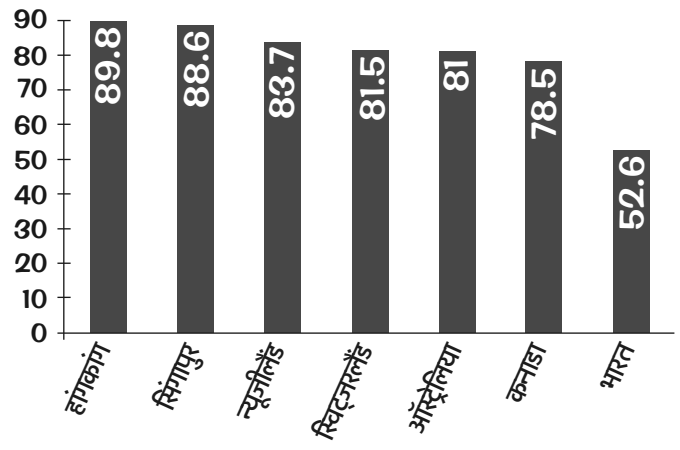

कुएं का मेंढक

सत्संग

एक दिन एक आदमी एक पर्चा लेकर रामकृष्ण परमहंस के पास पहुंचा। पर्चे में दावा किया गया था कि उनका धर्म ही सच्चा है, बाकी धर्म झूठे हैं। उसने पूछा, गुरुदेव, कैसे निर्णय किया जाए कि कौन-सा धर्म सच्चा है? रामकृष्ण ने उन्हें एक कहानी सुनाई-एक बार सागर का एक मेंढक अचानक कुएं में पहुंच गया। उसे देखकर कुएं का मेंढक बोला, तुम नहीं जानते होगे कि यह कुआं कितना बड़ा है। पर मैं इसकी लंबाई-चौड़ाई और गहराई से परिचित हूं। यह सुन समुद्र का मेंढक मन ही मन हंसा। उसने पूछा, क्या तुम सागर की लंबाई-चौड़ाई से परिचित हो? कुएं के मेंढक का जवाब था, क्यों नहीं। कुएं की लंबाई और चौड़ाई मेरी दो छलांग के बराबर है, तो सागर की लंबाई-चौड़ाई ज्यादा से ज्यादा पांच छलांग के बराबर होगी।

सागर वाले मेंढक ने कहा, तुम्हारी दुनिया इस छोटे से कुएं तक ही सीमित रही है। इसलिए सागर की लंबाई-चौड़ाई और गहराई की कल्पना करना भी तुम्हारे लिए असंभव है। इस कुएं जैसे अनगिनत कुएं भी सागर के आकार की बराबरी नहीं कर सकते। मैं अनेक वर्षों तक सागर में रहने के बावजूद उसका आकार नहीं बता सकता।

रामकृष्ण परमहंस ने यह कथा सुनाते हुए कहा कि आज अलग-अलग मतों-संप्रदायों के लोग अपने मत को ही श्रेष्ठ बताने के दुराग्रह में जी रहे हैं। जो यह दावा करता है कि उसका संप्रदाय श्रेष्ठ है और बाकी सब निम्न, वह कुएं का मेंढक है। अपने को ही श्रेष्ठ मानने वाला व्यक्ति धर्म की सागर जैसी गहराई में गोते लगाकर रत्न प्राप्त नहीं कर सकता।

-संकलित

हरियाली और रास्ता

छोटी बच्ची की बड़ी सीख

एक छोटी लड़की ने प्रियंका को जीवन का पाठ पढ़ाया कि हमारी परेशानी दूसरों के दुख से कितनी कम है।

***सोमवार** को ऑफिस जाना प्रियंका को बहुत खलता था। पूरा हफ्ता इंतजार करने के बाद बड़ी मुश्किल से एक रविवार आता था, और वह भी ऐसे हवा की तरह निकल जाता था कि पता ही नहीं चलता था। वापस सुबह छह बजे उठना, जल्दी-जल्दी तैयार होकर खाना बनाना और फिर ऑफिस की भागदौड़। ऐसा लगता था जैसे जिंदगी एक पिंजरे में कैद हो गई है। प्रियंका यह सब सोचते-सोचते राजीव चौक मेट्रो स्टेशन पहुंच गई। रोज के मुकाबले उस दिन मेट्रो में भीड़ थोड़ी कम ही थी। लेकिन महिला कंपार्टमेंट की सारी महिलाओं के चेहरों पर सोमवार का दर्द दिख रहा था। सब कहीं न कहीं जाने के लिए दौड़ रही थीं। प्रियंका को दरवाजे के किनारे वाली एक सीट मिल गई थी। वह वहां बैठी सारी महिलाओं के चेहरे पढ़ रही थी। कुछ ही देर में ट्रेन एम्स स्टेशन पहुंच गई। एम्स आने तक भीड़ थोड़ी बढ़ गई थी। प्रियंका ने देखा, एम्स पर एक महिला और उसकी बेटी मेट्रो में चढ़ी। लड़की की उम्र सात-आठ साल रही होगी। भीड़ के कारण वह महिला तो गेट के पास ही अटक गई, लेकिन उसकी बेटी छोटी सी थी। वह सबके पैरों के बीच से जगह बनाती हुई प्रियंका की बायीं तरफ आकर थोड़ी-सी जगह में बैठ गई। वह बहुत मासूम और प्यारी-सी थी। उसके चेहरे से खुशी जैसे टपक रही थी। प्रियंका उसे देखकर उसकी खुशी के बारे में सोच ही रही थी कि उस लड़की ने प्रियंका के बाएं हाथ को अपनी बाहों में जकड़ लिया। प्रियंका एकदम भौचक्की रह गई। फिर उसने धीरे से प्रियंका को अपना मुंह नीचे लाने के लिए इशारा किया। प्रियंका ने उस लड़की की मां की तरफ देखा, तो वह मुस्कराने लगीं। प्रियंका को लगा कि शायद यह उससे कुछ कहना चाहती होगी, इसलिए वह थोड़ा झुक गई। लेकिन जैसे ही वह झुकी, उस छोटी- सी लड़की ने उसे चूम लिया। प्रियंका एकदम हैरान थी। वह उस लड़की को जानती तक नहीं थी, लेकिन वह लड़की उसे ऐसे प्यार कर रही थी, जैसे वह उसे वर्षों से जानती हो। तभी थोड़ी जगह बनाती हुई उसकी मां प्रियंका के पास आई और कहने लगी, माफ कीजिएगा। असल में यह महीनों बाद आज अस्पताल से बाहर आई है। इसके दिल में सूराख था और हमें लगा था कि यह बच नहीं पाएगी। यह बहुत खुश है कि इसे जीवन वापस मिल गया। शायद इसीलिए आज थोड़ी ज्यादा खुश है। प्रियंका के देखते-देखते वह महिला अपनी लड़की को लेकर अगले स्टेशन पर उतरी और चली गई। लेकिन वह लड़की प्रियंका को जीवन जीने की प्रेरणा दे गई।*

सबक-दुखों के बोझ से दबें नहीं, बल्कि उसे जीवन का हिस्सा समझें।